प्लेग का टीका, हाफकिन और बोतल नम्बर 53 N

माधव केलकर

आपने भारत में कुछ सौ-डेढ़-सौ साल पहले बार-बार होने वाली महामारी प्लेग के बारे में काफी कुछ सुना होगा। किसी छोटे शहर या बड़े शहर में प्लेग की दस्तक होने के साथ ही वहाँ के निवासी अपने-अपने घरों से ज़रूरी माल-असबाब उठाकर अपने परिवार के साथ कस्बे से बाहर एक छोटी झोपड़ी बनाकर उसमें रहने लगते थे। वे तब तक बाहर रहते थे जब तक कस्बे पर मण्डरा रहा प्लेग का खतरा खत्म न हो जाए।

प्लेग जैसी महामारी की रोकथाम के लिए टीका बनाने और प्लेग से सुरक्षा दिलवाने की पहल यूक्रेनियाई मूल के वैज्ञानिक व्लादिमीर हाफकिन (Waldemar Haffkine) ने की थी। हाफकिन (1860-1930) ने भौतिकी-गणित-प्राणी विज्ञान में कॉलेज स्तर की पढ़ाई करने के बाद स्विटज़रलैंड व फ्रांस की ओर रुख किया। यहाँ प्रोफेसर एली मेटनिकोफ (Elie Metchnikoff) के सान्निध्य में काम करते हुए उनकी रुचि एक-कोशीय जीवों के अध्ययन में बढ़ने लगी। यूरोप में उन्हें लुई पास्चर के साथ काम करने का मौका भी मिला। इन सबका परिणाम यह रहा कि वे एक बेक्टीरियोलॉजिस्ट के रूप में अपनी पहचान बनाने में सफल रहे।

कई दफा असावधानी से, दुर्भाग्य पूर्ण तरीके से, बेहद छोटी-सी लगने वाली घटना की वजह से या किसी एक इन्सान की गलती के कारण किसी रिसर्चर का करियर दाँव पर लग जाता है, कलंक का सामना करना पड़ता है। आप भी सोच रहे होंगे कि मैं क्या पहेलियाँ बुझा रहा हूँ। लेकिन ये पहेलियाँ नहीं, हाफकिन के साथ घटी एक घटना है। आइए, इसे थोड़ा विस्तार से जानते हैं।

प्लेग का टीका बनाना

हुआ कुछ यूँ था कि हाफकिन भारत में इंडियन सिविल सर्विसिज़ (चिकित्सा सेवाएँ) के तहत सन् 1893 से कलकत्ता की रिसर्च लैब में कार्यरत थे। भारत आने से पहले हाफकिन ने हैजा महामारी के लिए टीका बना लिया था और इसके इन्सानों पर परीक्षण के परिणाम भी

बेहतर रहे थे। भारत में भी कुछेक इलाकों में जहाँ हैजे का प्रकोप था, वहाँ इस हैजा वेक्सीन का उपयोग किया गया। भारत की ब्रिटिश सरकार ने भी टीके को कारगर पाया था।

1896 के आसपास बम्बई में प्लेग ने दस्तक दी। ब्रिटिश सरकार ने हाफकिन से अनुरोध किया कि वे प्लेग के लिए भी कुछ कार्य करें। हाफकिन ने बम्बई में ग्रांट मेडिकल कॉलेज की लैब (बॉम्बे लैबोरेटरी) में काम करते हुए प्लेग की रोकथाम वाला टीका बना लिया था। शुरू में उन्होंने खरगोश जैसे प्राणियों पर वेक्सीन का ट्रायल किया। जब सन्तोषजनक परिणाम मिले तो उन्होंने तय किया था कि पहले वे टीके को खुद पर ही आज़माएँगे। 10 जनवरी 1897 को हाफकिन ने टीके को खुद के शरीर पर टोंचा और खुद के शरीर पर इस टीके के क्या अच्छे-बुरे प्रभाव पड़ते हैं, इसे देखने लगे। सामान्यतः इंजेक्शन वाली जगह पर दर्द, शरीर में हल्का बुखार जैसे लक्षण ही दिखाई दिए। उनकी समझ में आया कि उनके शरीर पर टीके के



1896 में बम्बई में आया प्लेग का दौर जिसमें व्यवस्थाएँ अस्त-व्यस्त हो गई थीं। उन दिनों प्लेग के मरीज़ों के लिए एक अस्थाई अस्पताल बनाया गया था। उसका एक दृश्य।



हाफकिन *- भारत में हैजा व प्लेग के टीके बनाने और टीकाकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।*

कोई भी बुरे परिणाम देखने को नहीं मिले हैं। अब उनका रास्ता खुल गया था कि वे इस टीके को अन्य इच्छुक व्यक्तियों पर आज़माकर देख सकते हैं। बम्बई में भायखला सुधारगृह के 154 कैदियों ने स्वेच्छा से टीका लगवाया। इनमें से 3 कैदियों की मृत्यु हुई, शेष स्वस्थ थे। टीकाकरण के बाद व्यक्ति के जीवित रहने की प्रत्याशा कितनी बढ़ती है, इसके लिए आँकड़े इकट्ठे हो रहे थे। जल्द ही कुछ सामान्य जनता ने भी टीके पर भरोसा दिखाया। यह सब देखकर हाफकिन को इस बात की तसल्ली हुई कि उनका ईजाद किया टीका इन्सानियत के काम आ रहा है।

सन् 1898 में बड़ौदा रियासत ने हाफकिन को बुलाया। यहाँ के उन्धेरा गाँव में प्लेग ने दस्तक दी थी। पूरे गाँव में सघन टीकाकरण अभियान चलाया गया। यहाँ के आँकड़ों से समझ आया कि प्लेग के टीके से शत-प्रतिशत सुरक्षा नहीं मिलती। मौत तो होती हैं, लेकिन मृतकों की संख्या काफी कम है।

इस सबके दौरान ही प्लेग से सम्बन्धित बॉम्बे लैबोरेटरी को बम्बई के परेल में ले जाया गया। इसका नाम प्लेग रिसर्च लैबोरेटरी रखा गया। यहाँ काम करने के लिए पर्याप्त जगह थी और भारत की ज़रूरत को देखते हुए बड़ी तादाद में प्लेगरोधी वेक्सीन का निर्माण व भण्डारण किया जा सकता था। हाफकिन प्लेगरोधी वेक्सीन बनाने के लिए जो तरीका अपना रहे थे, उसमें द्रव माध्यम में बेक्टीरिया वृद्धि करते थे, उनसे उत्पन्न एक्सट्रासेलुलर विष भी इसी द्रव में होता था। हाफकिन का मानना था कि कोई भी वेक्सीन सही मायने में तभी प्रभावी हो सकती है जब वो बेक्टीरिया के साथ-साथ एक्सट्रा-सेलुलर विष को भी खत्म कर सके। प्लेगरोधी वेक्सीन के ट्रायल व वेक्सीन कार्यक्रम के तहत जो आँकड़े



लैब की एक बोतल जिसमें थोड़ा द्रव शेष है। लेकिन माफ कीजिएगा यह बोतल नम्बर 53 N नहीं है।

मिले थे, उनसे यह स्पष्ट हो रहा था कि टीका लगाने के 24 घण्टे के भीतर यह काम करने लगती है। इसका असर 4-6 महीनों तक बना रहता है। प्लेग के मरीज़ों को भी वेक्सीन देने पर इसका प्रभाव होता है। इस सबकी वजह से मृत्युदर भी कम हुई।

भारत में प्लेगरोधी वेक्सीन को लेकर आलोचनाओं के स्वर भी मुखर हो रहे थे। इन सबको देखते हुए सन् 1899 में लंदन से एक प्लेग कमीशन भारत आया। प्लेग कमीशन ने भारत में प्लेग के स्वरूप को समझा, वेक्सीन कार्यक्रम व हाफकिन द्वारा वेक्सीन बनाने की विधि को समझा और अन्तर्राष्ट्रीय लैब में वेक्सीन बनाने के तरीकों से तुलना की। कुल मिलाकर प्लेग कमीशन, भारत में प्लेग को लेकर जो पहल हो रही थीं, उससे सन्तुष्ट था।

मलकोवाल में टीकाकरण

सन् 1895 से ही भारत के पंजाब प्रान्त में प्लेग की बार-बार पुनरावृति हो रही थी। ब्रिटिश सरकार ने पंजाब प्रान्त में टीकाकरण की मुहिम जल्द शुरू करने की योजना बनाई। ज़ाहिर-सी बात है कि पंजाब में टीकाकरण के लिए ज़रूरी तादाद में टीके बनाने की ज़िम्मेदारी हाफकिन की बॉम्बे लैबोरेटरी को सौंपी गई थी।

जल्द ही, बोतलों में भरकर टीकाकरण का तरल द्रव पंजाब पहुँचा दिया गया और सन् 1902 में टीकाकरण के तहत टीके लगाने का काम होशियारपुर ज़िले के मलकोवाल (Mulkowal) कस्बे में शुरू किया गया। वहाँ डॉक्टर ए.एम. इलियट के निर्देशन में टीकाकरण का काम शुरू हुआ। टीके की बोतल खोलते जाते थे

और लोगों को टीके लगाए जा रहे थे। 107 लोगों को टीके लगाए जा चुके थे। दुर्भाग्य से मलकोवाल में बोतल नम्बर 53 N से जिन 19 लोगों को टीके लगाए गए, उनकी चन्द रोज़ में मृत्यु हो गई। इन सभी 19 लोगों की मौत के साथ एक बात कॉमन थी कि इन सभी की मौत टिटेनस से हुई थी। जल्द ही यह खबर फैल गई और आम जनता का टीकाकरण पर से भरोसा उठने लगा। यह खबर जब हाफकिन को मिली तो उन्हें एक ज़बरदस्त झटका लगा। उन्हें इस घटना पर यकीन ही नहीं हो रहा था। 19 निर्दोष नागरिकों की मौत की ज़िम्मेदारी टीके पर डाली जा रही थी। अँग्रेज़ सरकार ने भी इस घटना को गम्भीरता से लेते हुए एक जाँच समिति का गठन किया। यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना 'मलकोवाल विपदा' (Mulkowal Disaster) के नाम से जानी जाती है।

जाँच समिति ने सन् 1903 में अपनी जाँच पूरी कर रिपोर्ट सरकार को सौंप दी। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि टीकाकरण के लिए आई बोतलों में मलकोवाल में टिटेनस संक्रमण फैलने की सम्भावना नहीं है। बोतल 53 N में भरे हुए तरल में टिटेनस के बैक्टीरिया पहले से मौजूद थे। समिति का विचार था कि बॉम्बे लैबोरेटरी ने तरल व बोतल को ठीक-से स्टरलाइज़ (संक्रमण-मुक्त, बैक्टीरिया-विहीन) नहीं किया होगा या टीके के तरल पदार्थ को बोतल में भरते समय पर्याप्त सावधानी नहीं बरती गई होगी जिसकी वजह से बोतल में टिटेनस के बैक्टीरिया की मौजूदगी बनी रही। यानी इस लापरवाही की जवाबदेही बॉम्बे लैबोरेटरी पर डाली गई।

जाँच समिति की एक आपत्ति वेक्सीन बनाने के तरीके को लेकर भी थी। जाँच समिति का कहना था कि हाफकिन वेक्सीन बनाने के लिए जो नया तरीका अपना रहे थे, उसमें आसुत जल व अगर (Agar) को ऊष्मा द्वारा स्टरलाइज़ कर रहे थे। इसकी वजह से स्टरलाइज़ेशन में कार्बोलिक अम्ल मिलाने की ज़रूरत नहीं थी (सामान्यतः वेक्सीन में कार्बोलिक अम्ल की सान्द्रता 0.5 प्रतिशत होती थी)। हाफकिन की इस विधि को प्लेग कमीशन द्वारा मान्यता नहीं मिली थी। प्लेग कमीशन द्वारा सन् 1899 में वेक्सीन बनाने की जिस विधि को देखा-समझा था, उस विधि को अब हाफकिन ने छोड़ दिया है।

बॉम्बे लैबोरेटरी पर जो आरोप निश्चित किए गए थे उसके जवाब में हाफकिन ने बताया कि लैब द्वारा पूरी तरह स्टरलाइज़ेशन के बाद ही टीके भेजे गए थे। वे जिस विधि से वेक्सीन बना रहे हैं, उस विधि से पेरिस की पास्चर लैब भी टीके बना रही है। लेकिन आखिरकार हाफकिन को एक साल के अवकाश पर भेज दिया गया।

इस घटना की वजह से उनके यश, उनकी कीर्ति पर एक दागनुमा कलंक लग गया था।

हताशा, निराशा का दौर

हाफकिन इस एक साल के दौरान यूरोप की अलग-अलग लैब में जाकर वेक्सीन पर रिसर्च करने वाले साथियों से मिले। उन्हें मलकोवाल की घटना बिना लाग-लपेट ब्यौरेवार बताई। टीके की सामग्री को तैयार करने, टीकों को प्रयोगशाला से पंजाब डिस्पेच करने, साथ में इंस्ट्रक्शन मैनुअल देने के बारे में भी विस्तार से बताया। इस सबका उद्देश्य सिर्फ इतना ही था कि रिसर्चर साथी बता सकेंगे कि हाफकिन ने किस पड़ाव पर गलती की है या सावधानी बरतने में कहाँ भूलचूक हुई है। ऐसे ही निराशा, विपरीत हालात में हाफकिन ने तीन साल गुज़ार दिए।

अँग्रेज़ सरकार ने मलकोवाल विपदा की जाँच समिति से जाँच करवाने के साथ-साथ लीस्टर इंस्टीट्यूट ऑफ प्रिवेंटिव मेडिसिन, लंदन से भी मलकोवाल घटना व प्लेग टीके को लेकर परामर्श किया। इंस्टीट्यूट के विचार से टीके की बोतल को मलकोवाल में खोलने पर इसमें टिटेनस संक्रमण की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। हाफकिन जिस नई विधि से टीके बना रहे थे, इंस्टीट्यूट ने उसे भी उचित पाया। यानी जाँच कमीशन और इंस्टीट्यूट की राय में विरोधाभास दिखाई दे रहा था।

आप भी सोच रहे होंगे कि मलकोवाल घटना के बाद पंजाब में प्लेग टीकाकरण कार्यक्रम का क्या हुआ। टीकाकरण का काम तो सन् 1902 के बाद भी जारी रहा। बस, हाफकिन के नए तरीके से वेक्सीन बनाना रोक दिया गया। पुराने तरीके से वेक्सीन बनाई जा रही थी जिसमें कार्बोलिक अम्ल की भी निश्चित मात्रा होती थी।

मलकोवाल विपदा की रिपोर्ट

अँग्रेज़ी हुकूमत ने सन् 1906 में मलकोवाल विपदा सम्बन्धी फायनल रिपोर्ट गज़ेटियर ऑफ इंडिया में प्रकाशित की। इस रिपोर्ट में कहा गया, ऐसा प्रतीत होता है कि जाँच समिति ने अपनी जाँच के दौरान कुछ महत्वपूर्ण बातों पर गौर नहीं किया था। जैसे डॉ. इलियट ने जाँच समिति को बताया था कि वेक्सीन की बोतल को खोलने पर उसमें तीव्र बदबू नहीं थी। वेक्सीन की सभी बोतलें 26 दिन पहले बम्बई से डिस्पेच हुई थीं। यदि बोतल नम्बर 53 N पहले से संक्रमित होती तो उसमें बुरी बदबू होनी चाहिए थी। इलियट ने अपने बयान में आगे बताया था कि उनके सहायक नरिन्दर सिंह जब बोतल 53 N खोल रहे थे तब उनके हाथ से चिमटी ज़मीन पर गिर गई और बोतल का कॉर्क बोतल के भीतर चला गया था।



हाफकिन के सम्मान में जारी किया गया डाक टिकट।

नरिन्दर सिंह ने चिमटी को कार्बोलिक घोल से धोकर उसे बोतल के भीतर डालकर कॉर्क को बाहर निकाला था। बॉम्बे लैबोरेटरी ने टीके की बोतल के साथ ज़रूरी सावधानियाँ भी बताई थीं (एक इंस्ट्रक्शन मैनुअल दिया गया था)। उसके मुताबिक चिमटी, स्टॉपर आदि के स्टरलाइज़ेशन के लिए स्प्रिट लैंप की लौ का उपयोग किया जाना था। कार्बोलिक घोल के उपयोग की मनाही थी। वास्तव में, नरिन्दर सिंह पंजाब प्लेग मैनुअल 1902 का पालन कर रहे थे जिसमें स्टरलाइज़ेशन के लिए कार्बोलिक घोल का उपयोग करने की इजाज़त थी जबकि उन्हें बॉम्बे लैबोरेटरी के मैनुअल का पालन करना चाहिए था।

फायनल रिपोर्ट ने लीस्टर इंस्टीट्यूट के परामर्श के आधार पर कहा कि मलकोवाल में बोतल 53 N में थोड़ी मात्रा में टिटेनस का संक्रमण हुआ होगा लेकिन टिटेनस को बोतल में अपनी संख्या बढ़ाने के लिए काफी समय मिला होगा। जिन लोगों का टीकाकरण बोतल 53 N से किया गया, उनके शरीर में टिटेनस के बैक्टीरिया प्रवेश कर गए। टीकाकरण में जिस सीरिंज का उपयोग किया गया, उसे कार्बोलिक घोल से धोने के बाद उसमें टिटनेस की मात्रा बेहद कम थी। इसलिए इसी सीरिंज से बोतल 53 N के बाद अन्य बोतल से जिन लोगों का टीकाकरण किया गया, उनके शरीर में टिटेनस का असर नहीं देखा गया।

दोस्तों का साथ और भारत वापसी

इस रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद हाफकिन की निर्दोषता साबित हुई लेकिन पहले की तरह उन पर भरोसा करके उन्हें महत्वपूर्ण काम सौंपे जाएँ, यह भी ज़रूरी था। किन्तु ऐसा होता हुआ दिख नहीं रहा था।

रोनॉल्ड रॉस (जिन्होंने भारत में मलेरिया सम्बन्धी शोध किया था) ने सन् 1907 में *नेचर* पत्रिका में एक खत के माध्यम से मलकोवाल विपदा के बारे में बताया। रॉस ने इस बात

की ओर भी संकेत किया कि यह एक आम धारणा है कि वेक्सीन में विषाक्तता बॉम्बे लैब की लापरवाही की वजह से आई। कोई भी इसमें स्थानीय भूलचूक देखना-सुनना नहीं चाहता। और तो और, एक ऐसे दौर में जब भारत में हज़ारों लोग प्लेग से मरते हैं, यहाँ वेक्सीन को सिरे से खारिज करने तक मामला पहुँच गया है। इसी तरह दुनिया के जाने-माने दस जीवाणु-विज्ञानियों ने हस्ताक्षरित खत के माध्यम से हाफकिन को अपना समर्थन दिया। यह खत *द टाइम्स* में प्रकाशित हुआ। रोनॉल्ड रॉस ने अपने स्तर पर प्रयास कर भारत के प्रमुख अधिकारियों को कहा कि वे हाफकिन को भारत में दोबारा काम करने का मौका दें। जल्द ही, सेक्रेटरी ऑफ इंडिया स्टेट ने हाफकिन को खत लिखकर भारत में काम करने का सम्मानजनक प्रस्ताव दिया।

सन् 1908 में हाफकिन को कलकत्ता की बायोलॉजिकल रिसर्च लैब का प्रधान डायरेक्टर नियुक्त किया गया। इस लैब में टीका सामग्री का उत्पादन नहीं होता था। हाफकिन के काम को सिर्फ रिसर्च तक सीमित किया गया था। लगता है मलकोवाल की दुर्घटना यहाँ भी पीछा कर रही थी। सन् 1915 में हाफकिन सेवानिवृत होकर यूरोप लौट गए। 1925 में बम्बई के परेल की रिसर्च लैब को हाफकिन इंस्टीट्यूट नाम दिया गया। 26 अक्टूबर 1930 को हाफकिन का निधन हुआ। उस दिन हाफकिन के सम्मान में बम्बई का ग्रांट मेडिकल कॉलेज व हाफकिन इंस्टीट्यूट बन्द रखा गया। 1964 में आज़ाद भारत की सरकार ने हाफकिन की स्मृति में एक डाक टिकिट भी जारी किया।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सन्दर्भ:

1. किशोर पत्रिका, जुलाई 1981 अंक। लेख - चूक एकाची, पण प्रायश्चित्त भलत्यालाच - लेखक श्री न.वा. कोगेकर।

2. Waldemar Mordecai Haffkine, CIE (1860–1930): prophylactic vaccination against cholera and bubonic plague in British India. By Barbara J Hawgood का लेख।